आतंकवाद पर भी साथ नहीं आते राजनैतिक दल

कांग्रेस-नीत सरकार को परेशानी में फंसा देखकर भाजपा आनन्दित होती है। जबकि यही समय है कि सभी को एकजुट हो जाना चाहिए। इसकी बजाय हर घटना को राजनीतिक रंग दे दिया जाता है और किसी भी मुद्दे पर आम राय नहीं बन पाती। प्रत्येक पार्टी राष्ट्र की एकता के बजाय चुनावी लाभ हानि को प्रमुखता देती है। यदि नई दिल्ली एक पाकिस्तान से नहीं पटरी बैठा सकती तो भारत को अन्य देशों से व्यवस्था करनी चाहिए- जिन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि वे आतंकवाद को कुचलने के मामले में सशक्त हैं। पश्चिम के साथ गंभीर वार्ता का समय आ गया है। हमें इस अवसर को गंवाना नहीं चाहिए। हमें उनकी वाक्पटुता से ही नहीं भ्रमित होना चाहिए। वस्तुतः हम सभ्यताओं के बीच टकराव को कट्टरपंथियों और उदारवादियों के बीच युद्ध में बदल सकते हैं। त्रासदी यह है कि भारत में ऐसा कोई नेता नहीं है, जो वह सूक्ष्मदृष्टि रखता हो। वे तो अल्पकालिक 'आपेरेटर' हैं, जो अपने उन तुच्छ मतभेदों में उलझे रहते हैं, जो देश हित के प्रतिकूल हैं। चुनौती राज्य तंत्र के समक्ष है। छोटे-छोटे मामलों में उलझे रहने का कोई समय नहीं है। उनसे तो राष्ट्र और अधिक विभाजित ही होगा। राजनीतिक दलों के लिए चीजें श्वेत या श्याम ही नहीं हैं।

भारत फिर भूल की पकड़ में आ गया। एक ओर उसने दिल्ली उच्च न्यायालय पर हुए बम विस्फोट को लेकर आक्रोश व्यक्त किया और दूसरी ओर प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह और बांग्लादेश की प्रधानमंत्री के बीच करार पर कुछ नाखुशी सी जाहिर की। दोनों ही मामले उस असहाय अवस्था को दर्शाते हैं जो केंद्रीय सरकार का बैज बन गई है। आतंकी हमले के मामले में यह उन सभी की असफलता है जो राष्ट्र की सुरक्षा में रत हैं। ढाका में, भारत तीस्ता नदी के पानी की भागीदारी पर कोई व्यवस्था नहीं कर पाया क्योंकि पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी नई दिल्ली को वचन देने के बाद पानी की एक सुनिश्चित मात्रा छोड़ने की इच्छुक नहीं थी।

दोनों ही की परिणतियां टूटती लड़खड़ाती सी मनमोहन सिंह सरकार के लिए अशुभ हैं। आतंकियों ने सरकार को एक बार पुनः ललकारा है, जो उसके सूत्रधारों का अब तक सुराग नहीं लगा पायी, हालांकि उस बम विस्फोट की जिम्मेदारी हरकत-उल-अंसार ने कबूली है, जो हूजी (हरकत उल जिहाद-इस्लामी) से पृथक हुआ गुट है।

दरअसल, जैसे ही विस्फोट हुआ, सरकारी सूत्रों ने अनधिकृत तौर पर कहा कि संदेह की सुई हूजी की ओर जाती है, जो पाकिस्तान और बांग्लादेश की भूमि से सक्रिय है। उन प्रयासों का कोई खास जिक्र नहीं हुआ, जो बांग्लादेश ने आतंकवाद को कुचलने के लिए किए हैं। हालांकि मनमोहन सिंह ने शेख हसीना द्वारा किए गए सहयोग को स्वीकार किया है। बम विस्फोट की भयावह आवाज के चलते भारत और बांग्लादेश के बीच सीमांकन को लेकर जो हर्ष का स्वर उभरा, वह दब गया। नई दिल्ली ने दोनों देशों के बीच उन एन्कलेवों (बस्तियों) के विनिमय का भी खास तौर पर उल्लेख नहीं किया, जिनका मामला दिसम्बर १९७१ में ढाका की मुक्ति के समय से ही लम्बित था।

बांग्लादेश के लोग हताश हैं, क्योंकि उन्होंने तो अपनी सारी उम्मीदें ही तीस्ता के पानी को लेकर केन्द्रित कर दी थीं। फिर भी क्षेत्रीय विनियम कोई सामान्य उपलब्धि नहीं है। असम में हंगामा है, हो हल्ला है और भारतीय जनता पार्टी लाल पीली है, क्योंकि वह ही अपने आप को 'भारत माता' का एकमात्र परिरक्षक (कस्टोडियम) मानती है। उसे यह अनुभूति होती नहीं लग रही कि सांप्रदायिक शांति के सवाल को राजनीति के आंगन से हटाकर मानवता की भूमि पर लाना होगा।

जहां तक तीस्ता के पानी के प्रश्न है, बांग्लादेश की पुरानी पीढ़ी को याद होगा कि फर्रखा बांध से और अधिक पानी देने के लिए पश्चिम बंगाल को मनाने में कितना लम्बा समय लगा था। निचले नदी तटीय क्षेत्र के बांग्लादेश को तीस्ता से पानी लेने का पूरा-पूरा हक है। विचारणीय मुद्दा यह है- कि कितना पानी? फर्रखा बांध करार के समय पश्चिम बंगाल का सूत्र एक परिपक्व, मजबूत मुख्यमंत्री ज्योति बसु के पास था। केंद्र को उन्हें मनाने में समय लगा। पश्चिम बंगाल की सहमति के बिना केंद्र आगे नहीं बढ़ सकता था, क्योंकि पानी राज्य का विषय है।

अतएव मुख्यमंत्री ममता बनर्जी को मनाने के लिए बहुत प्रयास करना होगा जो चंचल चित्त और सतर्क हैं। और पश्चिम बंगाल के भीतर भी काफी समर्थन जुटाना होगा। मनमोहन सिंह के अनुसार ममता बनर्जी अंतिम क्षण तक पूरी तरह तैयार थीं परंतु फिर तत्काल ही उनकी सोच बदल गयी। एक प्रभावी नेता अफवाहों और स्व-निर्मित संदेहों से ग्रस्त हो गयीं। उन्हें यह भय है कि कम्युनिस्ट, जिन्हें उन्होंने गत विधानसभा चुनाव में पछाड़ा था, वे उन पर झपट पड़ने के लिए अवसर की तलाश में हैं।

सच है कि तीस्ता पानी देने के प्रसंग में अंतिम शब्द पश्चिम बंगाल का ही होना है। समझौते के तौर पर जो आंकड़े तैयार किए गए थे वे उचित ही थे और तीस्ता का ज्यादातर पानी राज्य के हिस्से में ही छोड़ा गया था। भावुक बांग्लादेश ने स्थिति को और जटिल बना दिया, क्योंकि उसने इस मुद्दे को उस हद तक गर्म कर दिया कि जिसमें पानी में कमी करना भारत द्वारा बांग्लादेश को धोखा देने सा समझा गया, जो करार पर हस्ताक्षर होने का बेसब्री से इंतजार कर रहा था।

लोकतंत्र में जनता के अभिमत का अपना महत्व है। भारत के समान बांग्लादेश में भी उसकी महत्ता है। मतभेदों को घटाने या कम करने के लिए नितांत धैर्य और साहस अपेक्षित है। इसमें समय लगता है। करार तो होने ही हैं। तीस्ता संधि भी उसी तरह होगी- जैसे फर्रखा बांध संधि हुई थी। किंतु भारत को बुरा भला कहने से कोई मकसद सिद्ध नहीं होगा। भारत ने परिपक्वता दर्शाई है और ट्रांजिस्ट संधि को रोकने को लेकर कोई आक्रोशित प्रतिक्रिया नहीं हुई। जो दोनों के लिए आश्वस्त होने जैसी स्थिति थी।

दोष खोजते हुए ढाका को अधिक सतर्कता बरतनी चाहिए। बम विस्फोट ने भारत की प्राथमिकताओं को बदल दिया है। उसका ध्यान इस बात पर केंद्रित है कि किसी तरह से ऐसी व्यवस्था हो कि जिससे उस आतंकवाद से निपटा जा सके, जिसने भारत में जड़ें बना ली हैं। बांग्लादेश द्वारा 'इनपुट' सहायक सिद्ध होंगे। यह एक मनोवैज्ञानिक क्षण था कि ढाका को चाहिए था कि वह हिरासत में लिए गए उल्फा नेता को सौंप देता।

निःसंदेह सुरक्षा का मुख्य दायित्व नई दिल्ली पर है। हर बार जब विस्फोट होता है तो सरकार कहती है कि कुछ बलि चढ़ेंगे। किंतु अभी तक मैंने ऐसा कुछ भी होते नहीं देखा। अधिकारियों अथवा उन अधिकारियों की कोई जवाबदेही समक्ष नहीं आई जिनके तहत सुरक्षा प्रणाली थी। छह प्रमुख विस्फोटो का कोई सुराग नहीं खोजा जा सका। उनके पीछे जो लोग रहे उनका पता लगाने के आस-पास तक भी पुलिस अथवा सुरक्षा एजेन्सियां नहीं पहुंच सकीं। विस्फोट करने वालों ने उसी सामग्री का इस्तेमाल किया और उसी तरह के बम का विस्फोट किया, जैसा उन्होंने मई माह में दिल्ली उच्च न्यायालय के बाहर रखा था। जबकि सरकार बार-बार असफल रही है तो वह अमेरिका से सहायता क्यों नहीं लेती, जिसने अनेक बार ऐसी पेशकश की है? वाशिंगटन को यह श्रेय जाता है कि उसने ९/११ के बाद से, जिसकी दसवीं वार्षिकी अमरीकनों ने विधिवत गरिमा सहित आयोजित की, अब तक एक कोई भी वारदात नहीं होने दी। सत्य है कि उनके कानून बहुत कठोर हैं। किंतु हमारे भी वैसे ही हैं। हमने भी स्वतंत्रता पर अंकुश लगाए हैं, जो लोकतंत्र में नहीं सुहाते। फिर भी विस्फोट हो ही रहे हैं।

जो बात मुझे चकरा देती है वह है राजनीतिक दलों का रवैया। कांग्रेस-नीत सरकार को परेशानी में फंसा देखकर भाजपा आनन्दित होती है। जबकि यही समय है कि सभी को एकजुट हो जाना चाहिए। इसकी बजाय हर घटना को राजनीतिक रंग दे दिया जाता है और किसी भी मुद्दे पर आम राय नहीं बन पाती। प्रत्येक पार्टी राष्ट्र की एकता के बजाय चुनावी लाभ हानि को प्रमुखता देती है। यदि नई दिल्ली एक पाकिस्तान से नहीं पटरी बैठा सकती तो भारत को अन्य देशों से व्यवस्था करनी चाहिए- जिन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि वे आतंकवाद को कुचलने के मामले में सशक्त हैं। पश्चिम के साथ गंभीर वार्ता का समय आ गया है। हमें इस अवसर को गंवाना नहीं चाहिए। हमें उनकी वाक्पटुता से ही नहीं भ्रमित होना चाहिए। वस्तुतः हम सभ्यताओं के बीच टकराव को कट्टरपंथियों और उदारवादियों के बीच युद्ध में बदल सकते हैं। त्रासदी यह है कि भारत में ऐसा कोई नेता नहीं है, जो वह सूक्ष्मदृष्टि रखता हो। वे तो अल्पकालिक 'आपेरेटर' हैं, जो अपने उन तुच्छ मतभेदों में उलझे रहते हैं, जो देश हित के प्रतिकूल हैं। चुनौती राज्य तंत्र के समक्ष है। छोटे-छोटे मामलों में उलझे रहने का कोई समय नहीं है। उनसे तो राष्ट्र और अधिक विभाजित ही होगा। राजनीतिक दलों के लिए चीजें श्वेत या श्याम ही नहीं हैं। एक ग्रे (पलित) क्षेत्र भी है, जिसे उन्होंने चौड़ा करना चाहिए। उसके लिए समायोजन की सोच और सहनशीलता की भावना अपेक्षित है। मैं महसूस करता हूं कि जो सरेस देश को जोड़ता है, वह सूख रहा है।